प्रतिध्वनि आयी सामने से पलटकर, `हे आत्मा तुम सिद्ध हो'। समझ में आया ? आहाहा ! है ? वह प्रतिछंद के स्थानपर है, सामने से ध्वनि उठी है। जैसे परमात्मा को तुम कहते हो कि आप पूर्ण हैं, पूर्णानंद, हो तो ऐसी ही प्रतिध्वनि तुम्हारे लिये वापस आती है। `तुम भी पूरण हो'। पूरणानंद हो। आहाहा ! - ऐसा है। इसमें आदमी को कहाँ फुरसत है ? आत्मा साध्य है और यह (सिद्ध) आत्मा उसके प्रतिछंद के स्थान में है। सिद्ध प्रतिछंद के स्थान पर है। **जिनके स्वरूप का संसारी भव्य जीव चिंतन करके, `पूरण परमात्मपद को प्राप्त हुये'** उनके स्वरूप का संसारी जीव चिंतन करके। आहाहा ! उन जैसा होना चाहते हैं, जिसको अब संसार दशा में रहना नहीं। आहाहाहा ! ऐसे प्राणी को सिद्ध भगवान आत्मा को साधने में प्रतिछंद हैं। उनका ध्यान करें, विचार करें कि ऐसे सिद्ध, ऐसे परमात्मा, इन जैसा ही मैं हूँ। आहाहा ! स्वरूप का... संसारी भव्य जीवों... दोनों बात सिद्ध की हैं, अनंत सिद्ध, सिद्ध किये, अनंत काल में परमात्मदशा को प्राप्त, और संसारी भव्य जीव भी अनंत हैं, भव्य अर्थात मोक्ष जाने लायक ऐसे जीव, सिद्ध भगवान का चिंतन करके... आहाहा ! उनके समान अपने स्वरूप को ध्यान कर, सिद्ध (का) जैसा परमात्मा (स्वरूप है) वैसा हमारा स्वरूप है - ऐसा ध्यान करके आहाहा ! है ? उन जैसे हो जाते हैं ?

सिद्धों का ध्यान करके सिद्ध जैसे हो जाते हैं। इसलिये सिद्धों का ध्यान करके सिद्धों की स्थापना करते हैं। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं.६ गाथा-१ ता.१२-८-७८ सोमवार जेठ सुद-६ सं. २५०४

समयसार की पहलीगाथा चलती है, फिर से लेते हैं। टीका, टीका, यहाँ संस्कृत टीका में `अथ' शब्द मंगल अर्थ को सूचित करता है, प्रारंभ में `अथ' शब्द है। `अथ' प्रारंभ - ऐसा शब्द रखा है। संस्कृत, में `अथ' मंगल के स्वरूप का... अर्थात साधक धर्म की शुरूआत होती है... आहाहा ! `अथ' अर्थात अब अनंत काल से जो साधक स्वरूप जिसका ज्ञान नहीं था - ऐसा चैतन्य स्वभाव, उसकी अब साधकरूप में शुरूआत होती है। यही `अथ' नाम नई शुरूआत है। उसका नाम `अथ' यह ही मांगलिक है। आहाहाहा ! यह `अथ' तो संस्कृत टीका के शब्द का अर्थ हुआ।

`अब... ग्रंथ के आदि में' पाठ में - ऐसा आया, गाथा में तो ध्रुव, अचल और अनुपम... परंतु यहाँ अर्थ में मुख्य वंदितु सव्व सिद्धे। - ऐसा जो शब्द लिया है, उसमें से `वंदितु' का अर्थ निकाल कर और सर्व सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापित करता हूँ और श्रोता की पर्याय में अनंतसिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा ! अनंत अनंत सिद्धों का प्रथम तो अस्तित्व सिद्ध किया, यद्यपि संसारी प्राणी अनंत गुने हैं, फिर भी सिद्ध भी अनंत हैं और वह भी आदि बिना के है अनादि के हैं। - ऐसा नहीं कि पहले संसार था और फिर सिद्ध हुये। आहाहा ! ऐसी वस्तु स्थिति है, सिद्ध हुआ वह तो संसार (दशा)में से होते है; फिर भी - ऐसा नहीं कि पहले संसार फिर सिद्ध। और ***एक व्यक्ति की अपेक्षा से पहले (संसार है) परन्तु सामान्य की अपेक्षा से तो अनन्त सिद्ध अनादि से हैं।*** अहाहा !

जैसे आकाश के अंत का नाप है ? आहा ! यह क्या कहलाये वह क्षेत्र, क्षेत्र, क्षेत्र की बेहदता क्या कहें ? जिसप्रकार क्षेत्र के स्वभाव की बात है उसीप्रकार संसारी और सिद्ध दोनों स्वभाव अनादि के हैं। आहाहा ! कितने ही पण्डित - ऐसा कहते हैं कि सिद्धों की अपेक्षा संसार आठ वर्ष बड़ा है, आठ वर्ष के बाद सिद्ध होते हैं न, वह तो एक व्यक्ति की अपेक्षा से समुच्चय (दृष्टि से) सिद्ध भी (अनादि अनंत) हैं और संसारी भी अनादि अनंत हैं। जैसे क्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई की मर्यादा दिमाग में नहीं आये, कहाँ अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... अलोक... यह चला ही जाता है। अलोक के बाद क्या ? फिर फिर वही ही है ! (आकाश) आहाहा ! जैसे क्षेत्र के अमर्यादित अस्ति की सिद्धि है, उसीप्रकार सिद्ध भी अनादि के सिद्ध हैं आहाहा ! वह कैसे हैं सिद्ध ?

वह सभी सिद्ध, एक सिद्ध नहीं, अनंत सिद्ध हैं, अनंत शब्द प्रयोग किया नहीं, सभी सिद्ध - ऐसा शब्द प्रयोग किया है। आहा ! वह अनंतकाल, छह महिना और आठ समय में छहसो आठ मुक्ति पायें तो अनंत काल में कितनी संख्या हुई ? आहाहा ! वह सभी, आहाहा ! यहाँ, तो दूसरा कहना है, इतने अधिक सभी सिद्धों को मैं वंदता हूँ यह शब्द है। - ऐसा कहा है। ***वंदित्तु में से सर्व सिद्धों को हमने अपनी पर्याय में स्थापित किया है - ऐसा (अर्थ) निकाला है, आदर किया।*** राग पर्याय भिन्न रही। हमारी ज्ञान की पर्याय चाहे अल्पज्ञ है, और श्रोता की भी ज्ञान की पर्याय अल्पज्ञ है, उन दोनों का ख्याल है, फिर भी अल्पज्ञ पर्याय में अनंत सिद्धों को जानने की उसकी सामर्थ है। आहाहा ! भले मति-श्रुत ज्ञान की पर्याय हो, तो भी अनंत सिद्धों को जानने की ताकत है। तो अनंत सिद्ध हैं उसका ज्ञान की पर्याय आदर करती है, अर्थात वंदन करती है, अर्थात अपनी पर्याय में उसे स्थापित करते

हैं, उसका अर्थ वंदन करते हैं - ऐसा कहा। आहाहा !

सर्व सिद्धों को अपनी पर्याय में भावस्तुति से और द्रव्यस्तुति से स्थापित करता हूँ - ऐसा आया न ? है न ! भाव-द्रव्य-स्तुति अर्थात कि अपनी पर्याय में मैं अपना आत्मा पूर्णशुद्ध वह आराधक और मैं आराध्य। मैं आराध्य अर्थात वस्तु, और आराधक। मेरी पर्याय निर्विकल्प समाधि अर्थात्, निर्विकल्प शांति वह आराधक और त्रिकाली वस्तु, आराधन करने योग्य। (है) ऐसी निर्विकल्प समाधि उसको यहाँ भावस्तुति कहते हैं। आहाहा ! पर्याय में सभी अनंत सिद्ध... भाई, यह संसार यहाँ भूल जाते हैं आहाहा ! राग को भूल जाते हैं। हमारी ज्ञान पर्याय में... कुन्दकुन्दआचार्यने वंदितु कहा उसमें से अमृतचन्द्रआचार्य ने एक हजार वर्ष बाद यह भाव इसमें है - ऐसा निकाला आहाहा ! `वंदितु सव्व सिद्धे' में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहना चाहते हैं वह मैं अर्थ करता हूँ। (अमृतचन्द्राचार्य से) हजार वर्ष पहले हो गये हैं।

क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान खिला है, वह कला सभी को जान लेती है। आहा ! यह यहाँ पर दिखाया, एक तो सर्व सिद्ध, सिद्ध किये अर्थात कि कोई एक ही आत्मा माननेवाले... पवित्र होने पर सभी एक ही हो जाते हैं इसका निषेध किया। (श्रोताः- ज्योति में ज्योति मिल गई) पवित्र हो गये, परमात्मा हो गये, फिर भिन्न क्यों रहें ? - ऐसा कहनेवालों का निषेध किया है। बापू ! प्रत्येक परमात्मा (भिन्न)-भिन्न अनंत हैं, उनकी सत्ता भिन्न-भिन्न है, सभी हैं, एक है - ऐसा नहीं आहाहा ! सर्व सिद्धों को जो संख्यातीत अनंत... उन सभी सिद्धों को, आहाहा ! अपनी अल्पज्ञ पर्याय में उन्हें रखता हूँ। आहाहाहा ! हमारी पर्याय के गर्भ में अनंत सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहाहा ! हमारी अल्पज्ञ पर्याय में अनंत सर्व सिद्धों को बिठाता हूँ। आमंत्रण देकर... प्रभु यहाँ पधारो। आहाहा ! हमारी पर्याय आपको रखने की पात्रता रखती है। आहाहाहा ! गजब काम किया है ! (अमृतचन्द्रआचार्य ने अमृत साक्षात् भरा है)

वंदितु सव्वसिद्धे... गजब काम प्रभु ! एक तो अनंत सिद्धों की, सिद्धि की है। हमसे पहले अनंतसिद्ध हो गये हैं, ऐसे सिद्धों को सिद्ध करके और हमारी पर्याय अल्पज्ञ होने पर भी उसमें अनंत सिद्धों को स्थापित करने की ताकत है। ***हमारी पर्याय की भी इतनी ताकत है कि अनंत सिद्धों को रख सकती है, अनंत सिद्ध हैं इस प्रकार पर्याय जान सकती है*** ! आहाहा ! सब सिद्धों को भाव स्तुति से परद्रव्य है इसलिए सिद्ध उन्हे अकेला द्रव्य नमस्कार होता है - ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! हमारा भाव नमस्कार संयुक्त है। मैं शुद्ध पूर्णानंदप्रभु वह आराधन करने लायक, वह मैं और निर्विकल्प पर्याय से आराधक भी मैं - ऐसी भावस्तुति

से हमारी पर्याय में सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा ! वंदन करता हूँ। गजब टीका है। आहाहा ! अभी तो ऐसी टीका कहीं (देखने नहीं मिलती)। आत्मख्याति टीका गजब है। भाई ! (उसका स्पष्टीकरण गजब (का) किया है आपने) आहाहा ! उसमें है कितना, है न उसमें। आहाहा ! ऐसे अनंत सिद्धों को अपनी अल्पज्ञ पर्याय में - ऐसा मैं कहूँ - ऐसा नहीं, परंतु हमारी पर्याय अनंत सिद्धों का संग्रह कर सकती है। अनंत सिद्ध अर्थात् अनंत केवली, अनंत सर्वज्ञ, एक सर्वज्ञ को स्वीकारे तो, अनंत सर्वज्ञों को स्वीकारते हैं। ऐसी हमारी अल्पज्ञ पर्याय की ताकत है। आहाहा ! गजब काम किया है न ! आहा ! मैं भाव स्तुति से तो स्थापित करता हूँ, परंतु विकल्प द्वारा भी स्थापित करता हूँ। व्यवहार (से) सिद्ध को अपनी पर्याय में स्थापित करता हूँ। आहाहा ! इसप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य जो पाठ में कहते हैं उसे अमृतचन्द्राचार्य, उसमें यह भाव भरे हैं - ऐसा बताते हैं। आहाहा ! जैसे भैंस के थन में दूध भरा होता है और स्वस्थ बहिन निकाले उसीप्रकार इस पाठ में जो भाव भरा है उसे अमृतचन्द्राचार्य तर्क से, स्पष्ट करके उस भाव को बाहर निकालते हैं। आहाहा ! (वर्तमान में आप खोलते हैं) आहाहा ! (उनकी बलिहारी है बापा!)

भावस्तुति से आदर करता हूँ, अर्थात कि भावस्तुति से हमारी पर्याय में निर्विकल्प दशा में उसे स्थापित करता हूँ। आहाहाहा ! और विकल्प की दशा में भी उन अनंत सिद्धों को (मेरा) वंदन, अर्थात पर होने से वंदन करता हूँ। वह विकल्प है परंतु उस विकल्प में भी अनंत सिद्धों को मैं स्थापित करता हूँ। आहाहा ! ऐसी बात! आहा ! एक बात।

भाव-द्रव्य स्तुति से अपने आत्मा में, हमारे आत्मा में, आहाहा ! देखो तो सही मांगलिक किया, हम सिद्ध होनेवाले हैं, अल्पकाल में हों ! - ऐसा कहते हैं, हमने अनंत सिद्धों की स्थापना पर्याय में की है। हम भी भविष्य में सिद्ध होनेवाले हैं। आहाहा ! तो अनंता अनंता अनंता अनंता सिद्धो... उन्हें निर्विकल्प दशा द्वारा और विकल्प द्वारा अपनी ***अल्पज्ञ पर्याय में और राग में उसे स्थापित करता हूँ। आहाहा ! ज्ञान में तो समझ कर स्थापित करता हूँ और राग में विकल्प में (भी) बहुमान आया इसलिये स्थापित करता हूँ।*** कारण कि राग कुछ जानता नहीं। आहाहा ! ऐसे अनंत सिद्ध भगवान को भाव द्रव्य स्तुति द्वारा अपने ज्ञान में एक बात, तथा दूसरे के आत्मा में... आहाहा ! गजब किया, प्रभु समयसार ने तो। आहाहा !

श्रोता की पर्याय में... श्रोता चाहे अप्रतिबुद्ध है, अभी अज्ञानी है, फिर भी प्रभु तुम श्रोता के रूप में आये हो। हम कहीं सुनाने जाते नहीं, परंतु श्रोता की अपेक्षा सुनने आये हो। आहा ! ***इस स्थिति में सुनने आये हो तो तुम्हारी पर्याय की भी***

इतनी पात्रता हमें लगती है कि उस पर्याय में अनंत सिद्धों को हम स्थापित करते हैं। आहाहाहा ! और हमारे विकल्प द्वारा भी अनंत सिद्धों को तुम्हारी पर्याय में स्थापित करते हैं। आहाहा ! भाव-द्रव्य दोनों से है न ! स्व और पर दोनों में। आहाहाहा ! ओहोहो ! सिद्धों को नीचे उतारा है। सिद्ध तो वहां हैं... प्रभु! अब आप हमसे दूर नहीं रह सकते। आहाहाहा ! हमारी पर्याय में हम आमंत्रण देते हैं न ! उसका काल आयेगा अतः हम पूर्ण सिद्ध हो जायेंगे। इसप्रकार तो यहाँ इतना जोर देते हैं। श्रोता को भी, ***ऐसे श्रोताओं को ही, श्रोता गिनने में आया है। आहाहा ! कि जिसकी अल्पज्ञ पर्याय में भी सुनने आया है सिद्धों का स्वरूप और आत्मा का स्वरूप सुनने आया है तो उसकी पर्यायमें भी हम अनंत सिद्धों को स्थापित करते हैं और वह (स्वयं) स्थापित कर सकें - ऐसी उनकी योग्यता देखते हैं।*** आहाहाहा !

दूसरों की आत्मा में स्थापित करके... प्रभु भी पर आत्मा है उसमें तुमको क्या? बापू ! विकल्प उठा है न ! वोच्छामि है न ! कहेंगे - ऐसा (अर्थ) हुआ न ! वोच्छामि शब्द डाला है न ! कहेंगे (- ऐसा है) तब किसे कहेंगे ? श्रोता को, आहाहा ! हम उनको कहेंगे। `वोच्छामि' इसका अर्थ करेंगे। भावार्थ में यथा स्थान जो शब्द आना चाहिए उस स्थान पर वह शब्द आया है। उसका नाम परिभाषण सूत्र कहा जाता है, भावार्थ में आयेगा। आहाहा ! आत्मा में स्थापित करके... पर के आत्मा की पर्याय में स्थापित करके... ऐसे ही श्रोताओं को लिया है। आहाहाहाहा ! कि जिसकी पर्याय में अनंत सिद्धों को एकत्र कर सकेंगें। आहाहा ! ***उसकी पर्याय अनंत सिद्धों को स्वीकारेगी और आदर करेगी। ऐसे श्रोता को श्रोतारूप में गिनने में आया है।*** आहाहा ! और वह श्रोता भी... आहाहाहा ! जब अनंत सिद्धों (को) स्थापित करते हैं प्रभु ! जैसे हम सिद्धपने को प्राप्त होंगे वैसे यह टोली (समूह) भी सिद्धपने को प्राप्त होगी ही। आहाहा ! आहाहाहा !

नहीं प्राप्त होवे - ऐसी बात हमारे पास है ही नहीं। आहाहा ! कहते हैं... इस श्लोक में आया है न ? हमने देह और आत्मा को भिन्न बताया हैं तब कौन नहीं माने ? मानेगा ही । आहाहा ! ऐसे अस्तित्व का, पूरण सर्वज्ञ पर्याय का अस्तित्व जहाँ हम सिद्ध करके तुममें स्थापित करते हैं... शक्ति में तो वह पूरण है और तुम उस शक्ति से पूरण हो, परंतु प्रगट हुयी पर्याय में वह नहीं, तुम्हारी शक्ति में (है), परंतु पर्याय में नहीं, इसलिये, अब पर्याय में स्थापित करके... तुम पर्याय में (भी) सिद्धों का लक्ष्य लेकर हमें सुनना। आहाहा ! तुम सिद्धों को लक्ष्य (में) लेकर यह सुनना। आहाहा ! (तुम) अवश्य सिद्ध हो जाओगे। आहाहाहा ! (वर्तमान पर्याय अल्पज्ञ है) अल्पज्ञ है, परंतु इतनी ताकत है (क्यों) कि श्रोता बनकर तुम आये हो, और

हमें सुनने के लिये तुम आये हो, तो तुम्हारी पर्याय की ताकत अनंत सिद्धों को रखने की है, अपनी पर्याय में। आहाहा ! ***मैं स्थापित करता हूँ पर की पर्याय में, तो उसका अर्थ क्या ? मैं तुम्हारी पर्याय की इतनी योग्यता देखता हूँ। हमारे ज्ञान में - ऐसा आया है कि तुम्हारी पर्याय में इतनी ताकत है और तुम भी इसीप्रकार मानना।*** आहाहा ! गजब काम किया है न ! यह `वंदित्तु सव्व सिद्धे' आहाहाहाहा ! विकल्प है तो द्रव्य से बात की है, परंतु निर्विकल्पसहित का विकल्प है। आहाहा ! इसप्रकार सुननेवालों की पर्याय में भी हम अनंत सिद्धों को स्थापित करते हैं, तब प्रभु तुम नहीं रख सकते यह प्रश्न ही नहीं। आहाहा ! अनंता सिद्ध को पर्याय में स्थापित करते हैं, इसलिये तुम्हारा लक्ष्य अल्पज्ञरूप में नहीं रह सकता। आहाहा ! अनंत सर्वज्ञों को पर्याय में स्थापित किया तो तुम्हारा लक्ष्य सर्वज्ञ ऊपर जायेगा तथा लक्ष्य रखकर अब हमारी बात सुनना। आहाहाहा ! प्रवीणभाई। ऐसी बातें हैं आहाहा ! भाग्य (से सुनने मिलता है) !

अमृतचन्द्र आचार्य हजार वर्ष पहले `वंदित्तु सव्व सिद्धे' का अर्थ करते हैं। कहाँ हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्द आचार्य हुये, वह भी स्वयं छद्मस्थ थे अमृतचन्द्राचार्य, (भी) बापू ! छद्मस्थपना न देखो आहाहा ! हमारा प्रभु सर्वज्ञ स्वभावी और हमारी पर्याय में अनंत सर्वज्ञों को हमने स्थापित करके रखा है। वह अब बाहर नहीं जा सकता। आहाहाहा ! अब हमारा आत्मा सिद्धसे दूर नहीं रह सकता आहाहा ! कौन जाने क्या भरा है इसमें !! इतनी वजनदार है अंदर शक्ति और उसका संग्रह। ओहोहो ! ऐसे पर के आत्मा में स्थापित करके। यहाँ तक तो कहनेवाले और सुननेवाले दोनों के आत्मा में स्थापित करके, यहाँ तक बात की है।

अब कहना है क्या ? समय नाम का प्राभृत (कहना है) फिर समय का प्राभृत, फिर समय का अर्थ पदार्थ भी होता है और मूल अर्थ आत्मा होता है। आत्मा में सभी पदार्थ आ जाते हैं, आत्मा का ज्ञान होनेपर स्वका ज्ञान होने से उसमें पर का ज्ञान आ जाता है। क्योंकि एक समय की पर्याय में छह द्रव्यों को जानना, - ऐसी पर्याय की ताकत है। जीव के एक समय की पर्याय में छहो द्रव्यों को जानना - ऐसी पर्याय की शक्ति है एक समय की पर्याय में अनंत सिद्ध, अनंत निगोदिया और अनंत परमाणु अनंत स्कंधों को एक समय की पर्याय में जानने की शक्ति है। आहा ! तो एक समय की पर्याय की ऐसी ताकत है, तो ऐसी अनंती पर्यायों को धारण करनेवाला गुण (उन गुणो) को धरनेवाला प्रभु, आहाहा ! कहते हैं कि उसको लक्ष्य में लेकर अब हमारी बात सुनो। आहाहा ! समझ में आया ?

समय नाम के प्राभृत को भाव-वचन अर्थात् हमारे क्षयोपशम ज्ञान की जो दशा

प्रगट हुयी है, उस विकास के द्वारा में कहूँगा। वाणी और विकल्प में ज्ञान निमित्त है, परंतु ज्ञान के इस भाव-वचन द्वारा, भाव-वचन अर्थात् विकल्प नहीं। यहाँ भाव वचन अर्थात् ज्ञान का विकास जो पर्याय में है, जो मैं समयसार को कहना चाहता हूँ, उसका मुझे ज्ञान है, उस क्षयोपशम को हम भाव-वचन कहते हैं। आहाहा।

जो कहा जायेगा समयसार, उसका मुझे ज्ञान है तब मैं कहूँगा, यह तो प्रगट ज्ञान को भाव-वचन कहा जाता है। समझमें आया ? कल तो वह डाक्टर थे जो समझते नहीं थे अतः स्पष्टीकरण विशेष नहीं आया। प्रथम तो बाहर में बहुत उलझ गये हों... आहाहा ! यह बातें बापा, यह तो पूर्ण निवृत्ति की बात है। आहाहा ! उसके साथ - ऐसा कहा कि द्रव्य-वचन अर्थात् कि विकल्प आदि तब उससे जो पुण्य बंधेगा, उससे हमें भविष्य के भव में सभी संयोग धर्म के मिलेंगे। द्रव्य-स्तुति हुई न ? आहाहा ! हम, भगवान के पास ने गणधर संतो के पास (सुनी) क्योंकि उसी स्थान पर हम भविष्य में जानेवाले हैं, अपना पूरा करने। आहाहाहा ! भाव से तो वर्तमानमें हम निर्विकल्प समाधि स्तुति करते हैं, परंतु विकल्प से भी करते हैं क्योंकि हमें ज्ञात है कि इस भव में सर्वज्ञ नहीं हैं। आहाहा ! सर्वज्ञ को स्थापित करते हैं, परंतु ***इस भव में पर्याय में सर्वज्ञपना नहीं होगा - ऐसा हमें ज्ञात है, इसलिए विकल्प से - ऐसा ज्यादा पुण्य बंधेगा कि जहाँ सर्वज्ञ परमात्मा होंगे, समोसरण होगा, गणधर होंगें इस विकल्प के फल में - ऐसा पुण्य बंधेगा और - ऐसा संयोग मिलेगा।*** आहाहा !

स्वभाव की धारा से स्वभाव पूर्ण होगा और विकल्प की धारा से पूर्ण को समझानेवालों का संयोग प्राप्त होगा। आहाहा ! समझमें आया ? - ऐसा मार्ग है बापू ! अरे ! परमात्मा के संतो का पेट बहुत (बड़ा है) आहाहा ! उनकी ज्ञान कला, समकित कला, चारित्र कला, उसकी क्या बात कहें ? आहाहा ! मुनिराज स्वयं कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं हजार वर्ष बाद (भगवान) हुये। प्रभुजी, आप तो भगवान के पास नहीं गये थे न ? कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे और उनकी समकितदशा में भले क्षायक न हो, परंतु वहाँ गये थे अतः अप्रतिहत दशा तो है, परंतु आप (अमृतचन्द्र) गये नहीं थे न ? (तो कहते हैं) हम भाव-भगवान के पास गये थे। आहाहा ! और उसमें से यह ज्ञान की धारा आती है, उसके द्वारा कहूँगा। आहाहाहाहा ! मैं अपने वैभव से कहूँगा - ऐसा कहते हैं। फिर कहेंगे कि हमने केवली और श्रुतकेवली को सुना है, निमित्त अपेक्षा कहेंगे, भगवान को हमने सुना है, श्रुतकेवलियों के साथ चर्चा करके सुना है, प्रभु ! आहाहा ! हम ऐसे अकेले जीव पंचम काल के नहीं। परंतु हमने भगवान के पास सुना है। आहाहाहा ! तथा संतो के पास तथा श्रुत केवलियों

के पास हमने चर्चायें की हैं ! प्रभु हमारा आत्मा पंचमकाल में भले हो परंतु ऐसी स्थिति में था वहाँ से आया हूँ गजब टीका है। आहाहा ! भाव और द्रव्य को स्थापित करके। समय अर्थात भाव-वचन और द्रव्य-वचन से परिभाषण (कहेंगे) ! परिभाषण का अर्थ करेंगे। जहाँ जहाँ जो चाहिए वहाँ वहाँ उसकी स्थापना करे, शास्त्र की रचना, उसका नाम परिभाषण, परि अर्थात समस्त प्रकार से कहना, अर्थात जिस शैली से, जिस प्रकार जिस समय, जिस क्षेत्र में उसके योग्य जो शब्द हों उसकी रचना (करना) उसका नाम परिभाषण है। पंचमकाल के प्राणियों के लिये, यहाँ कहते हैं और वह पंचमकाल में हैं तो उनके योग्य भी परिभाषण होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

शुरु करते हैं, परिभाषण करते हैं - ऐसा नहीं कहा, शुरू करते हैं, ज्ञान के विकासमें से प्रारंभ करते हैं। आहाहाहा ! तथा हम छद्मस्थ हैं और शुरू करते हैं। आहाहा ! ऐसी शरूआत थी कि उसकी पूर्णता हो गयी, समयसार पूरण हो गया। आहाहा ! समझ में आया ? कहने का आशय कि हम शुरू करते हैं, शुरू करते हैं। आहाहा ! पूरा हो उसके लिये समय तो यहाँ उसे पूरा हो गया। ४१५ गाथा और टीका पूरी हो गई। पूरण हो गया। परिभाषण... शुरू करते है, ज्ञान की धारा में हमें जो कहना है वह हमने भगवान के पास सुना है, श्रुतकेवली के पास चर्चा की है और हमें भी अंदर से स्वयं प्रतिभास हुआ है, उसमें से शुरू करते हैं। आहाहा ! गजब कहते हैं !! कहेंगे - ऐसा नहीं कहा परिभाषण करूंगा, भाई ! पण्डितजी ! (आचार्य देव कहते हैं) शुरू करते है, गजब बात कहते हैं न ! क्या कहते हैं। आहाहा ! प्रभु तं `एयत्त विहत्तं दाएहं' इतना तो कहा परंतु फिर कहा `जदि दाएजज' दिखाने में आये... मैं छद्मस्थ हूँ, आहाहा ! हमारा नाथ और तुम्हारा नाथ ऐसे आत्मा को कहने के लिये हम शुरू करते हैं परंतु जो दिखायेंगे न, तथा एयत्त विहत्तं में' दिखाता हूँ, दिखाता हूँ परंतु दिखाऊ तो..... आहाहाहा !

प्रभु तुम श्रोता के रूप आये हो, सिद्धों को स्थापित किया है, आहाहा ! अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा ! शुरू करते हैं... परंतु शुरू किया तो उनका तो वह पूरण हो गया। टोडरमलजी ने शुरू किया परंतु पूरण नहीं हुआ, `मोक्षमार्गप्रकाशक' शुरू किया परंतु पूर्ण नहीं हुआ। यहाँ संत कहते हैं कि मैं प्रारंभ करता हूँ अभी पूरा नहीं हुआ है परंतु पूरा हो जायगा। आहाहा ! शुरू करते हैं - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं, आहाहा ! संत आचार्य इसप्रकार वाणी द्वारा - ऐसा कहते हैं, है तो सभी वस्तु निर्विकल्प और निर्विकल्प दशा में सिद्ध स्थित हैं, परंतु इसप्रकार, मैं वाणी द्वारा वस्तु की स्थिति का वर्णन शुरू करता हूँ। शुरू करता हूँ। आहाहा !

`वोच्छामि' - ऐसा कहा न ! भाई, उसमें से निकाला है। (कहा) शुरू करता

हूँ। `वंदित्तु सव्व सिद्धे' सर्व सिद्धों को स्थापित करके, अपने और तुम्हारे आत्मा में, भाव और द्रव्य-स्तुति से भाव और द्रव्य-वचन से आहाहाहा ! प्रारंभ करते हैं। आहा ! मैं कहता हूँ - ऐसा नहीं कहकर शुरू करते हैं इस प्रकार `वोच्छामि' शब्द है पाठ में। है ? (मैं) कहता हूँ। उसका अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने यह निकाला है। आहाहा ! जो भाव है वही निकाला है कि यह `वोच्छामि' कहा भले ही इसका अर्थ यह है। आहाहा ! प्रारंभ करता हूँ। कहना प्रारंभ करता हूँ। आहाहाहा ! गाथा मे ंतो भाव-द्रव्य-वचन नहीं है। विकल्प उत्पन्न हुआ है वह द्रव्य-वचन है। विकल्प है यही द्रव्य-वचन है। वाणी तो असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्य-वचन है। विकल्प उठता है वह अंर्तजल्प है। निर्विकल्पता है यह तो अंतर शांति समाधि है। भाव नमस्कार और भावस्तुति है। आहाहाहा !

- ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि इसप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं। आहाहा ! और यह टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य हैं थोड़ा भी हो, सत्य होना चाहिए न ? आहाहा ! इसप्रकार शुरू करते हैं - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं समयसार कहूँगा - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं - ऐसा न लेकर प्रारंभ करता हूँ - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहाहा ! एक-एक शब्द का मूल्य है, यह संतों की वाणी है - जिन्होंने केवली के भाव का स्पष्टीकरण किया है। आहाहाहा ! प्रभु तुम भी महान हो तुम्हारी बात भी महान है बापू ! आहाहा ! तुम्हारी पर्याय में अनंत सिद्धों की स्थापना की अब तुम्हारी पर्याय की महानता, द्रव्य की तो क्या बात करना। आहाहा ! परंतु तुम्हारी पर्याय में... आहाहा ! अनंत सिद्धों को जहाँ स्थापित किया, अब उसे राग का आदर नहीं होगा।

अल्पज्ञ में सिद्धों की स्थापना की अब उनमें अल्पज्ञता रहेगी नहीं। आहाहा ! यह सर्वज्ञ स्वभावी भगवान की बात करेंगे प्रभु ! तो सर्वज्ञ स्वभाव में ही तुम जाओगे और सर्वज्ञ हो जाओगे। आहाहा ! निःशंक, निःसंदेह - ऐसा तुम जानो। आहाहा हम भव्य होगें कि अभव्य ? ऐसी बात रहने दो, किसने तुम से बात की आहाहा ! भव्य अभव्य मार्गणा का तो निषेध है, आत्मा में भव्य-अभव्य नहीं। आत्मा भव्य भी नहीं अभव्य भी नहीं। भव्य हो तो सिद्धों में भव्यपना रहना चाहिए। सिद्धों में भव्यपना रहता नहीं। ***सिद्धों में भव्यत्व का अभाव है क्योंकि भव्य की जो योग्यता थी वह प्रगट हो गई अब भव्यपना सिद्धों में नहीं, अभव्यपना तो है ही नहीं परंतु सिद्धों में तो भव्यपना-अभव्यपना दोनों नहीं। आहाहा !***

यहाँ कहते हैं कि जहाँ हम बात करते हैं वहाँ तुम भव्य-अभव्य का प्रश्न ही करना नहीं, परंतु सिद्ध होने में अनंतकाल लगेगा यह भी मत मानना। आहाहा !

सम्यक्त्व होने के बाद सिद्ध होने में असंख्य समय ही चाहिए, अनंत समय नहीं चाहिए, आहाहा... उसी प्रकार हम यहाँ स्थापित करते हैं तो प्रभु विश्वास करना, विश्वास करना अंदर कि इस आत्मा को ऐसी बात सुनने को मिली और जब हम सुनने के योग्य हुये, तथा उसमें अनंत सिद्धों को प्रभु ने हममें स्थापित किया और हमारी योग्यता देख कर उन्हें स्थापित किया है। आहाहा ! श्रोताओं को (सागमटे न्योता) (चूल से) दिया है। संयुक्त निमंत्रण समझे न ! घर के सभी लोग और महेमान सभी आना - ऐसा।

हमारे काठियावाड में संयुक्त निमंत्रण अर्थात पूरा घर। महेमान सहित भोजन को आना - उसे संयुक्त निमंत्रण कहा जाता है। कमरबंद जीमने का कहें तो तो युवान लोग आयें, और कन्या का कहें तो कन्या आयें - ऐसे तीन प्रकार है। निमंत्रण विधि के तीन प्रकार है है न ? तीन है न ?

यहाँ संयुक्त निमंत्रण है। आहाहा ! प्रभु सभी श्रोता सिद्धपद होने योग्य हो। हाँ तुम सभी। इसलिये हम सिद्धों की स्थापना करते हैं तुममें प्रभु। आहाहाहा ! और यह बात हम शुरू करते हैं अर्थात कि तुम्हें भी बात सुनने तैयार रहना पड़ेगा। प्रारंभ करते हैं अर्थात अंत होगा तब तक तुम्हें ध्यान रखना पड़ेगा। आहाहा ! आहाहा !

यह सिद्ध भगवान... अब जो सिद्धों की स्थापना की, अपनी पर्याय में और सामनेवाले श्रोता को आत्मा की पर्याय में, सिद्धों की स्थापना की, `**यह सिद्ध भगवान सिद्धपना के कारण साध्य जो आत्मा।**' अपना आत्मा साध्य है उसके स्थान में सिद्ध है, सिद्ध भी साध्य हैं जैसे, वैसे आत्मा साध्य है। जिसप्रकार सिद्धपने को साधना है, इसीप्रकार यहाँ आत्मा को साधना है, यह आत्मा सिद्धों को साधता है। सिद्धपना के कारण साध्य जो आत्मा उसके प्रतिछन्द स्थान पर हैं। सिद्धपने के कारण साध्य आत्मा प्रतिछन्द-प्रभु पूर्ण तुम हो, तब सामने से (प्रतिध्वनि) प्रभु तुम पूर्ण हो। प्रतिछन्द (प्रतिध्वनि) सामने से आवाज ध्वनि सुननेवाला चौंक उठे ऐसी आवाज है। आहाहा ! तुम पूर्ण आनंद के नाथ हो, तब सामने से आवाज आती है प्रतिध्वनि, पूर्ण अनंत आनंद के नाथ तुम हो। आहाहा ! जितने सिद्धों के लिये विशेषण कहने में आते उसके सामने आवाज ध्वनि उठती है प्रतिध्वनि कि तुम भी वैसे ही हो। आहाहा ! समझ में आया कुछ ?

`सिद्ध भगवान सिद्धपने के कारण... पूरण सिद्ध हो गये हैं तथा उसके कारण साध्य जो आत्मा उसके प्रतिछन्द स्थान पर हैं। आत्मा साध्य है उसका प्रतिछन्द स्थान सिद्ध हैं, जिनके स्वरूप का संसारी भव्य जीव... अभव्य निकाल दिये आहाहा ! चिंतन करके अंदर में ध्यान करके। आहाहाहा ! संसारी भव्य जीव जिनके स्वरूप का चिंतन करके... जैसे सिद्ध हैं - ऐसा ही मैं हूँ। आहाहा ! हमारी जाति और

प्रभु की जाति में फर्क नहीं आहाहा ! - ऐसा चिंतवन करके... सिद्धों को अपने आत्मा में चिंतवन करके, उनके सामने अपने स्वरूप का ध्यान करके। सिद्ध समान अपने स्वरूप का ध्यान करके, देखा ? मूल बात, यहाँ दुहराना है ! चिंतवन भले उनके स्वरूप का परंतु मूल तो यहाँ पीछे ले जाना है, उनके समान अपने स्वरूप का ध्यान करके, आहाहा ! जैसे बालक अपनी माता का दूध पीता है उसी प्रकार आनंद का ध्यान करते हैं ध्याते हैं। आहाहा ! है ? अपने स्वरूप को ध्याकर। आहाहा ! स्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान में ध्याकर। आहाहा ! स्वरूप को ध्यान में ध्येय बनाकर, ध्यान में ध्याकर, उसका रस लेकर, आहाहाहाहा ! उन जैसे हो जाते है, उन जैसे हो जाते हैं। नहीं होंगे - ऐसा प्रश्न ही नहीं है। आहाहा !

सिद्धों का ध्यान, साध्य आत्मा के प्रतिछन्द के स्थान पर है, जैसा तुम सिद्धों को कहोगे - ऐसा ही तुम्हारा आत्मा है। ऐसे आत्मा को सिद्धों के स्वरूप का चिंतन करके प्रथम तो चिंतवन, फिर अंदरध्यान करके इसप्रकार अंतर के पूरण स्वभाव को ध्याकर अहाहा ! ध्याकर अर्थात ध्यान में उसके आनंद को लेकर। मां के आंचलमें से जैसे बालक दूध पीता है उसीप्रकार आत्मा के अंदर आनंदमें से उसे ध्याकर, आनंद को पीकर... आहाहा !

एक भाई कहते थे कि यह समयसार हमने १५ दिन में पढ़ लिया, आप तो बहुत तारीफ करते हो, परंतु हमने तो १५ दिन में पढ़ लिया। अरे भाई ! इसकी एक एक पंक्ति भाई ! बापा ! (पढ़ लिया था परंतु समझा नहीं था) ! समझे क्या धूल ? पंरतु - ऐसा कहते (है), आप समयसार की बहुत तारीफ करते हो, मैं पढ़ गया। बापा अंग्रेजी के शब्दों की तरह ए. बी. सी. डी. इस प्रकार पढ़ गये। परंतु बापू, उसकी एक एक पंक्ति, एक-एक गाथा बापू, यह तो संतो की अमर वाणी है। अमृतवाणी (है) - अमर होने की वाणी है। यह वाणी अफर है - ऐसा तुम्हें अफरपना, सिद्धपना हो - ऐसी यह अफर बात है, श्रोताओं को - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा !

उनके समान अपने स्वरूप को... देखा ? सिद्ध समान अपने स्वरूप को ध्याकरके आहाहाहा ! उन जैसे हो जाते हैं। सिद्ध जैसे हो जाते है। (श्रोता :- पर्याय में) आहाहा ! जो सिद्ध का चिंतवन करे... उनको हमने वंदन क्यों किया, उसका आदर क्यों किया कि उनका ध्यान, चिंतवन करके उनके आत्मा का ध्यान करके उन समान हो जाते हैं इसलिये `वंदित्तु सव्व सिद्धे' सिद्धों को आत्मा में स्थापित किया उन्हें वंदन किया - ऐसा कहा जाता है, आहाहाहा ! गजब व्याख्या है ना !!

`चारों गतियों से विलक्षण... आहाहा ! चारों गति दुःखरूप हैं भाई ! मनुष्य

गति स्वर्गगति भी दुःखरूप है, पराधीन है, जिस सिद्धों के स्वरूप को तेरी पर्याय में स्थापित किया, हमारी पर्याय में स्थापित किया, उनके सिद्ध का चिंतवन करके हमारा स्वरूप - ऐसा है, ऐसे अंतर आत्मा का ध्यान करके सिद्ध गति को प्राप्त करेगें। आहाहाहा ! चारों गतियों से विलक्षण-चारों गतियों में उसका कुछ लक्षण मिले ऐसी चार गति नहीं उससे विलक्षण है सिद्ध की गति यह तो कोई विलक्षण है। आहाहाहा ! विपरीत लक्षण - ऐसा नहीं परंतु कोई भिन्न प्रकार का, विलक्षण है। आहाहा ! अरे यह बात केवली परमात्मा, जिनेन्द्र देव त्रिलोकनाथ, कहेंगे। हम उनके पास से सुनकर यहाँ आये है। आहाहा !'

प्रभु विराजते हैं (सीमंधरनाथ !) आहाहा ! उनके पास हमने सुना है, कुछ शंकादि हो तो श्रुत केवलियों के पास चर्चा करके हमने समाधान किया है। आहाहा ! वह त्रिलोकनाथ का संदेश हम तुम्हें सुनाते है, आहाहा ! सुननेवालों को कहते हैं, सिद्धों को हमने क्यों स्थापित किया और नमस्कार किया ? ***भाव-द्रव्य स्तुति क्यों की ? कि उनका चिंतवन करके और उनके स्वरूप जैसा, हमारा स्वरूप है। - ऐसा अंतर में ध्यान करके ध्याकर सिद्ध जैसे हो जाते हैं।*** आहाहा ! और वह सिद्ध चार गति से विलक्षण हैं। है ? `पंचमगति मोक्ष' उसको प्राप्त हुये हैं चारों गतियो से विलक्षण है। आहाहा ! ऐसी जो पंचमगति, यह भी है तो एक गति, सिद्ध भी एक गति है, पर्याय है, द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य गुण तो त्रिकाल है, यह तो पंचमगति को प्राप्त हुये हैं। - ऐसा है न ? (सिद्ध) पर्याय को प्राप्त हुये है। पूर्ण मोक्ष दशा को प्राप्त हुये हैं आहाहा ! पंचमगति - ऐसा जो मोक्ष उसे प्राप्त हुये हैं। अर्थात कि वह सिद्ध पर्याय को प्राप्त हुये हैं। देखो ! तुम्हारा स्वरूप सिद्ध जैसा है इस पर्याय में तुम्हें स्थापित करके उसीका चिंतन करके, उसरूप का ध्यान करके, पंचमगति मोक्ष को (पाना है), यह भी गति एक पर्याय है, प्राप्त हुये हैं, मोक्ष गति रूप पर्याय को उन्होंने प्राप्त किया है। मोक्ष कोई गुण नहीं, गुण और द्रव्य तो त्रिकाल है, जो प्राप्त होती वह पर्याय होती है। आहाहा ! पंचम गति रूप मोक्ष को पाते हैं।

अब पहले जो विशेषण कहे थे, (अंदर) ध्रुव अचल, अनुपम, गाथा के अर्थ में - गाथा के अर्थ में पहले आये वह विशेषण, वह विशेषण अब कहते हैं। टीका में - कि यह मोक्ष गति है कैसी ? जो मोक्ष पर्याय को प्राप्त हुये हैं, नयी प्राप्त की है, थी नहीं, नहीं थी, शक्ति रूप में सिद्ध(पना) था। परंतु मोक्ष पर्याय रूप में नहीं थी किसी भी दिन (समय) अभूतपूर्व, (अर्थात) पहले नहीं हुयी, ऐसी मोक्ष पर्याय को पायेंगे ही, पायेंगे। आहाहा ! वह मोक्ष गति कैसी है। आहाहा ! उसकी विशेष बात करेंगे।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !